जैन गणित-विज्ञान की शोध दिशाएँ

लक्ष्मीचन्द्र जैन

वर्तमान वैज्ञानिक आधारों पर हुई खोजों के संदर्भ में अभिनव अवधि में अनेक लेख जैन गणित एवं विज्ञान पर प्रकाशित हो चुके हैं।[1] ये लेख सतही अथवा साहित्यिक नहीं हैं, किन्तु एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

1. (अ) Datta B. B., The Jaina School of Mathematics, Bull. Cal. Maths. Soc., 21 (1929) pp. 115–145.
   (ब) Datta B. B., Mathematics of Nemicandra, The Jaina Antiquary, Arrah, 1, no. ii (1935) pp. 25–44.
   (स) Singh A. N., Mathematics of Dhavala – I, Satkhandagama, book iv, edited by Dr. H. L. Jain and others, Amaraoti, 1942. pp, v – xxi.
   (द) Singh, A. N., History of Mathematics in India from Jaina Sources, The Jaina Antiqary, 15, no. ii, (1949), pp. 46–53; and 16, no. ii (1950), pp. 54–69. The Central Jaina Oriental Library, Arrah.
   (इ) Jain, L. C., Tiloapannatti ka Ganita, Reprinted from introduction to Jambu Divapannatli Samgaho, Jivaraj Granthamala. Sholapur, 1958, pp. 1-109.
   (फ) Jain L. C., On the Jaina School of Mathematics, Babu Chotelal Jaina Smriti Grantha, Calcutta, 1967, pp. 265-292.
   (क) Jain, L. F., Set Theory in Jaina School of Mathematics, I. J. H. S. vol, 8, no. 1, 1973, pp 1-27.
   (ख) Jain, L. C., The Kinematic Motion of astral real and counter Bodies in Trilok-asara, I. J. H. S., vol. II, no. 1, 1976, pp. 58-74.
   (ग) Das, S. R., The Jaina Calendar, The Jaina Antiquary, Arrah, vol. 3, no. ii, sep. 1973, pp. 31-36

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनाकर प्रस्तुत किये गये हैं। वलोदर्स्की ने श्रीधर तथा महावीराचार्य पर विशेष शोध लेख लिखे हैं। सिकदार के लेखों में जहाँ दर्शन और विज्ञान को यथा-योग्य मर्यादाओं तक विस्तृत कर नवीनता प्रखर उठी है, वहाँ महेन्द्र कुमार एवं जैन के लेखों में इतिहास, गणित एवं विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को संयुक्त क्षेत्रों की खोज प्रस्तुत की गयी है। दत्त और सिंह ने बुनियादी कार्य किया है गणित इतिहास का, तथा गुप्ता ने गणित इतिहास की अज्ञात गहराइयों में पहुँच की है। लिश्क एवं शर्मा ने जैन ज्योतिष के गणितानुयोग पर कार्य किया है तथा सरस्वती ने प्राकृत ग्रंथों के गणित पर अभिव्यँजना की है। शुक्ला ने आर्यभट्ट प्रथम के टीकाकार भास्कर प्रथम की टीका में पूर्ववर्ती प्राकृत ग्रंथों की आर्याओं और गाथाओं को खोजा है। अग्रवाल का शोध प्रबन्ध विस्तृत रूप में जैन गणित और ज्योतिष की जानकारी देता है। इस प्रकार अब तक जो कार्य हो चुका है वह नई शोध दिशाओं की ओर इंगित करता है तथा विभिन्न विद्या के केन्द्रों में जैन गणित-विज्ञान में शोध हेतु यथोचित प्रबन्ध कराने की ओर प्रेरणा देता है। ध्यान रहे कि यह सब शोध मुख्यतः ऐसे स्थानों में हुआ है जहाँ जैन ग्रंथ केन्द्र नहीं हैं अतः ये अनेक ग्रंथों के अभाव में हुए हैं। गोम्मटसारादि ग्रंथों की वृहद् टीकाओं की सामग्री में पंडित टोडरमल द्वारा बड़ा अंशदान है और उक्त प्रायः 3000 पृष्ठों की

(घ) Shastri, N. C., Bhartiya Jyotisa ka Posaka Jaina Jyotisa, Varni Abhinandana Grantha, Saugor, 1962, pp.

(च) Sikdara, J. C., Jaina Atomic Theory, I. J. H. S., 5.2 (1970), pp. 197-218.

(छ) Shukla, K. S. Hindu Mathematics in the seventh century as found in Bhaskara I's commentary on Aryabhatiya (iv), Ganita, vol. 23, Dec, 1972, no. 2, pp. 41-50.

(ज) Gupta. R. C., Circumferencc of the Jambudvipa in Jaina Cosmography, vol. 10, no. 1, 1975, 38-46.

(झ) Volodarsky, A. I., Articles on Sridhara and Mahavira, Fiziko matematicheskie nauki V stranakh vostoka 1 (1966) and 2 (1969). Cf. also a special chapter on India, History of Mathematics from the earliest Times to the Beginning of the 19th Century, vol. I, edited by A. P. Yushkevich (Moscow 1970-1972).

(ट) Lishk S. S., and Sharma S. D., The Evolution of Measures in Jain Astronomy, Tirthankar, vol 1, nos. 7-12, Jul.-Dec. 1975, pp. 83-92.

(ठ) Jain, L. C., Aryabhata the Astronomer and Yativrsabha, the Cosmographer, ibid, pp. 102-106.

(ड) प्रमुख शोध प्रबन्धों में मुकुट बिहारी अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत, "गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों का योगदान" आगरा विश्वविद्यालय, 1972 है, तथा लिश्क, सज्जनसिंह द्वारा जैन ज्योतिष—बेदांगोत्तर एवं हेलेनयुगपूर्व, नामक शोध प्रबन्ध पंजाब विश्वविद्यालय में अक्टूबर '76 में प्रस्तुत होने जा रहा है। महावीरराज गेलड़ा द्वारा भी रसायन विज्ञान में शोध अग्रसर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामग्री शोध छात्रों हेतु शीघ्र ही छपाना अब अति आवश्यक प्रतीत हो रहा है ।[2]

जैन लौकिक गणित एवं ज्योतिष को (व्यावहारिक) गणित रूप में महावीराचार्य, श्रीधराचार्य तथा राजादित्य ठक्कर फेरू ने विकसित किया । ज्योतिष के गणित को विकसित करने में प्रमुख रूप से कालकाचार्य, हरिभद्र, चन्द्रलेख, महेन्द्र सूरी, लब्धचन्द्र गणि के अंशदान भी उल्लेखनीय हैं ।[3]

उपरोक्त लौकिक रूप लोकोत्तर गणित-ज्योतिष से भिन्न रूप से विकसित हुआ प्रतीत होता है । विशेषकर कर्म-सिद्धान्त सम्बन्धी गणित को विकसित करने के लिए तिलोय पण्णत्ती[4] जैसे ग्रंथों में आधार निर्मित किया गया है । षटखंडागम[5] के प्रथम पाँच खंडों में भूमिका डाली गयी है तथा महाबन्ध ग्रंथों[6] में बन्ध तत्त्व का निरूपण राशि सिद्धान्त के आश्रय से किया गया है । पुनः कसाय पाहुड[7] में उपशम और क्षपणा के गणितीय रूप का निखार है । इन ग्रंथों के सार रूप एवं टीका रूप ग्रंथों में तथा इतर श्वेताम्बर कार्यादि ग्रंथों में गणित विज्ञान की सामग्री इतिहास तथा प्रयोग एवं विश्लेषण शोध कार्य हेतु अद्वितीय है ।

इतिहास सम्बन्धी गणित ज्योतिष एवं कर्मगणित सिद्धान्त की शोध—

इस लेख में हम मुख्यतः लोकोत्तर गणित-विज्ञान शोध का विवरण प्रस्तुत करेंगे । लोकोत्तर गणितादि के प्रमाण यूनान, भारत और चीन में बेबिलनीय स्रोत के कुछ अंश लेकर प्रकट हुए हैं, जिनमें रवानी लाने का श्रेय वर्द्धमान महावीरकालीन मुनि मंडल को है जिनके अंशदान पश्चिम और पूर्व के उच्च मस्तिष्कों के लिए प्रेरणा एवं कौतूहल की वस्तु बन गये । यह निश्चत है कि महावीर पूर्व परम्पराओं की अभिलेखबद्ध सामग्री मिश्र, चीन, बेबिलिन, सुमेरु आदि स्थलों पर जिस रूप में उपलब्ध है वह भारत में सिन्धु हड़प्पा के अज्ञात रूप में दिखाई देती है, किन्तु उन सभी में वह शक्ति नहीं थी कि वे विश्व की महावीरकालीन जागृति की ज्योति में नये गणित का उद्भव कर सकें ।[8] इसी हेतु इतिहास का यह पक्ष उभारना श्रेयस्कर होगा कि कर्म सिद्धान्त का निर्माण करने में जिस गणित विद्या की आवश्यकता हुई वह लोकोपकारी प्रवृत्ति को लेकर हुई तथा उसे उन्नत करने में विश्व के प्रत्येक भाग में विभिन्न गणित की शाखाएँ प्रस्फुटित होती चली गयीं । अलौकिक प्रेरणा का स्रोत भारत, यूनान तथा

---

2. गोम्मटसार, लब्धिसार एवं क्षपणासार, (वृ. तीन टीकाओं सहित), गांधी हरिभाई देवकरण ग्रंथमाला, कलकत्ता, 1919 । इनमें पं टोडरमल कृत सम्यक्ज्ञान चन्द्रिका टीका है जिसमें अर्थ संदृष्टि अधिकार अलग से दिये गये हैं ।
3. देखिये, नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1970 पृ. 125—160 ।
4. तिलोय पण्णत्ती भाग 1 (1943), तथा भाग 2 (1952), शोलापुर ।
5. षट्खण्डागम, (धवल टीका स.) भाग 1—16, डा. हीरालाल आदि, (अमरावती विदिशा 1939—1959)
6. महाबंध, भाग 1—7, ज्ञानपीठ—काशी (पं. सु. चं. दिवाकर एवं पं. फू. चं. सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सम्पादित), 1947—1958
7. कसायपाहुड—सूत्र और चूर्णि अनुवादादि, पं. हीरालाल सि. शा. कलकत्ता—1955 । साथ ही, कसाय पाहुड (जयधवल टीका), मथुरा 1944 आदि ।
8. देखिये, B. L. Vander Waerden, Science Awakening, Holland, 1945 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चीन रहा, किन्तु अहिंसा और सत्य के रूपों का चित्रण जिस रूप में वर्द्धमानकालीन भारत में हुआ, तथा उनकी विचारधारा में हुआ वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।[9]

आज के गणित-इतिहासकार भले ही ऐसे स्रोत की उपस्थिति की परिकल्पना बेबिलन में क्यों न करें किन्तु गणितीय विधियों में आमूल-चूल परिवर्तन प्राकृत ग्रंथों में ही — न्यायायिक समन्वय लिए, पर्याप्त रूप में तथा आवश्यकीय कारणों से हुआ दृष्टिगत होता है। कर्म सिद्धान्त में ही अनादि अनन्त विषयक द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव राशियाँ, उनके अल्प-बहुत्व, उनका [illegible]ादि सलगा गणन, उनका वैश्लेषिक अध्ययन आदि किया गया है। सर्वाधिक रहस्य उस इतिहास का है जो क्रांतिकारी सिस्टम सिद्धान्त के तथ्यों को कर्मों के सामयिक विलक्षण परिवर्तनों में प्रकट करता है।

जहाँ इटली में जीनो (460 ई. पू.) के अनंत-विभाज्यता सम्बन्धी तर्क विस्मय और कौतूहल उत्पन्न करते हैं, तथा यूनानियों को अनन्त की गणना से भयभीत करते हैं,[10] तथा जहाँ चीन में 'हुई शिह' (पाँचवी सदी ई. पू.) के असद्भास[11] से सहसम्बद्ध प्रतीत होते हैं वहाँ प्राकृत ग्रंथों में वे सिद्धान्त रूप से उपचारित किये जाकर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की प्ररूपणा का आधार बनते हैं। (धवल पु. 3 एवं 4)। कणाद[12] से प्रायः 200 वर्ष पूर्व जहाँ उमास्वाति ने पुद्गल परमाणु और उसके अविभागी प्रतिच्छेद (शक्ति-अंशों) की चर्चा की है वहाँ उसी आधार पर सीमित क्षेत्र में अनन्त-विभाज्यता का खण्डन करने वाले जीनों के तर्क और मोशिग (370 ई. पू.) की बिन्दु-परिभाषा सह-सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।[13] अविभागी समय सम्बन्धी प्रकरण जीनों के अंतिम दो तर्कों का विषय बनते हैं। प्राकृत ग्रंथों में अनेक प्रकार के अविभागी प्रतिच्छेद यथार्थ अनन्तों के इतिहास का निर्माण करते हैं तथा अनेक प्रकार के द्रव्यात्मक, भावात्मक, कालात्मक एवं क्षेत्रात्मक अनन्तों के अल्प-बहुत्व को देकर इतिहास में अमरत्व प्रदान करते हैं। (ये प्रकरण धवल पु. 3 तथा 4 में तथा महाबन्ध ग्रन्थों में विशेष रूप से निर्वचनीत किये गये हैं।)

अनन्तों के अल्प-बहुत्व के प्रकरण यूरोप में पुनः गैलिलियो (1564—1642) की एक-एक संवाद चर्चाओं में प्रकट होते हैं[14] तथा जार्ज केण्टर (1845-1958) के जीवन भर के अथक, अटूट, दुस्साहसपूर्ण प्रयासों में जन्म लेते हैं[15] तथा वृक्ष रूप में पल्लवित होते हैं। उसके फलस्वरूप प्रायः 25 वर्ष से प्रस्फुटित हुए सिस्टम-सायबर्नेटिक सिद्धान्त हैं जिन्हें कर्म-सिद्धान्त

---

9. देखिये, महावीराचार्य—गणित सार संग्रह—प्रस्तावना, शोलापुर 1963।

10. T. Heath, Greek History of Mathematics, vol. I (1921) pp. 275 et seq.

11. Needham J. and Ling W., Science and Civilization in China, vol. 1, Cambridge, p. 144 (1954), vol. 3. (1959).

12. देखिए Ray, P., History of Chemistry in Ancient and Medieval India, Calcutta, 1956, pp. 46, 291, et seq.

13. देखिये, नीधम, भाग 1, पृ. 155। धवला पुस्तक 3 तथा 4 भी देखिए। आज का गणित अपरिभाषित बिन्दु को लेकर व्यवहार करता है।

14. Bell E. T., Development of Mathematics, 1945, p. 273.

15. Fraenkel A. A., Abstract Set Theory, 1953, introduction.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का गणित, नवीन सामग्री अपने राशि सिद्धान्त पर आधारित कर दे सकेगी।[16] (देखिये लब्धिसार एवं क्षपणासार-वृहदटीकाएँ।) जहां जार्ज केन्टर को कोई ऐसी आवश्यकता का कोई आधार नहीं था वहाँ प्राकृत ग्रंथों के इस गणित को कर्म-सिद्धान्त प्रतिपादित करने की कठोर आवश्यकता का विशाल एवं गहन आधार था। परिणामों की अतीव निर्मलता का उद्देश्य जगत इतिहास की उपेक्षा करने में अपने नामों को छिपाकर अमर हो गया। प्रायः प्रत्येक घटना में सांतता, अनुमान और अभिबिन्दुता प्रस्थापित कर समाधान कर लिया जाता है। किन्तु असीम गहराइयों और अनन्त ऊचाइयों में पहुँच करने हेतु नबीन गणितीय उपकरणों का आविष्कार करना होता है—वह आज की आधुनिक ज्यामिति और बीजगणित जिनका सहसम्बन्ध प्राकृत ग्रंथों के क्षेत्रों और बीजों से करने परने पर इतिहास के पृष्ठ स्वर्णिम किए जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि वर्द्धमान युग में एक नवीन पथ की ओर मोड़ देने के लिए, सर्वदृष्टियों से आदर्श को तौलने के लिये, भारत तथा विदेशों में भी प्रचलित लौकिक गणितों को साधन रूप में अवश्य चुना गया होगा। उसमें नवीन प्रसाधन अपने साध्यों के आधार पर आविष्कृत किये गये होंगे और युगान्तर में उनका प्रचलन पुनः-पुनः हारमोनीय भावों में देश-देशान्तरों में होता चल गया होगा। अभिलेखबद्ध सामग्री से प्रतीत होता है कि नवीन पद्धतियों का उपयोग सम्भवतः निम्न-रूप में विकसित हुआ होगा :—

1. विविध प्रतीकत्व का विकास (देखिए ति. प. एवं अ. सं.)
2. संख्याएँ लिखने तथा व्यक्त करने में दसार्हा आदि पद्धतियों का प्रयोग
3. ह्रासित गुण्य राशियों के लिखने में स्थानार्हा पद्धति का प्रयोग (अ. सं.)
4. सलागा गणन का उपयोग (धवल, पु. 3-4)
5. एक-एक, एक-बहु तथा बहु-बहु संवाद विधि का प्रयोग (धवल, पु.-3)
6. विरलन-देय गुणन तथा वर्गन संवर्गन विधियों का प्रयोग (धवल एवं तिलोयपण्णत्ती)
7. क्षेत्र प्रयोग विधि तथा काल प्रयोग विधि का उपयोग (धवल, पु. 3)
8. वर्गादि स्थानों में खण्डित, भाजित, वरलित, अपहृत, प्रमाण, कारण, निरुक्ति एवं विकल्प विधियों का प्रयोग। धवल, पु. 3, पृ. 40, आदि)
9. धाराओं द्वारा अनेक अनन्तात्मक एवं असंख्यात्मक तथा संख्येय राशियों के पद एवं पद-स्थानों का निरूपण।[17] (त्रिलोकसार, प्र. अध्याय)
10. सूच्यंगुल जगश्रेणि, अंतर्मुहूर्त, पल्य, सागर, अविभागी प्रतिच्छेद, प्रदेश, समय आदि इकाइयों एवं संख्या तथा उपमा मानों के निरूपण और तीनों लोक के खंडों द्वारा विभिन्न राशियों के निरूपण।

---

16. Kalman R. E., Falb, P. L. and Arbib M. A.. Topics in Mathematical System Theory, T M H, Bombay, 1969.
17. आचार्य नेमिचंद्र सि. च., "त्रिलोकसार" माधवचंद्र भैविद्य कृत टीका, बम्बई, 1920।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. 109800 गगन खंडों के कोणीय माप तथा योजन के दूरीय माप द्वारा ज्योतिष बिम्बों का स्थिर एवं गतिशील प्रमाणों का निर्धारण।[18]

12. ज्योतिष बिम्बों का युग्मीय विधि से सम्मुख प्रस्थापन कर गतिशील घटनाओं के आकलन। कुंतल-दीर्घवृत्तीय बिम्बगमनशीलता का एक क्षेत्रीय सिद्धान्त।[19]

उपरोक्त आविष्कारों की ठीक तिथियाँ निर्धारण करना कठिन है, किन्तु स्मृति मंद होने के फलस्वरूप उनका उत्तरोत्तर अभिलेखन वर्द्धमान के बाद की प्रक्रिया अवश्य प्रतीत होती है, जिसका शृंखलाबद्ध प्रस्फुटन आज का विशालतम वैज्ञानिक गणितीय साहित्य रूप में दर्शनीय है। उपरोक्त सामग्री का अंतिम ऐतिहासिक रूप पंडित टोडरमल कृत गोम्मटसारादि की वृहद टीकाओं में दृष्टव्य है।[20] इसमें उन्होंने ऋण प्रतीक के लिए पाँच चिन्हों का प्रयोग बतलाया है। शून्य का विभिन्न अर्थों में प्रतीक-बद्ध उपयोग है। उसमें सलगा गणन के भी प्रयोग हैं जिनमें फलन के फलन के प्रतीक की अवधारणा को विकसित करने की ओर असफलता मिली प्रतीत होती है। यदि वे प्रयास इस ओर बढ़ते और भारतीय गणित विद्वानों का झुकाव इस ओर अधिक होता, तो कुछ शताब्दियों पूर्व ही आज का युग उपस्थित होता और यह श्रेय भारत को यथोचित मिलता। इसमें प्रयुक्त हुए कुछ प्रतीक गिरनार एव अशोक काल से पूर्व के शिलालेख कालीन प्रतीन होते हैं। अशोक के पूर्व के बड़ली ग्राम (अजमेर) तथा नेपाल की तराई के प्रिपावा नामक स्थान में उपलब्ध सामग्री में जो 'ई' का चिन्ह है, उससे ऋण (रिण अथवा रि) के लिए प्रयुक्त चिन्हों का संबंध संभवतः स्थापित किया जा सकता है।[21] (देखिये, ओझा रचित भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. 2, 47, 1959 दिल्ली)।

जहाँ अरस्तू (384 ई. पू. से 322 ई. पू.) आत्माओं की श्रेढि के सिद्धान्त का प्ररूपण करते हैं, वहाँ चीन में ऐसा ही सिद्धान्त शुइनत्जू (298 ई. पू.—238 ई. पू., Hsun Tzu या Hsun Chhing) द्वारा प्ररूपित किया गया है, और यही भारत में जीवों के मार्गणा स्थानादि रूप में निरूपित है। (नीधम, भाग 1, पृ. 155)। चीन से लेकर यूनान तक ऐसी अवधारणाओं का युगपत् प्रकट होना इतिहास की समस्या है। इसी प्रकार चन्द्रमा के बढ़ने-घटने के कारण समुद्रों के नीचे की पाताल वायु का फैलना (ति. प. भाग 1, 4—2403, शोलापुर, 1943), चीन और यूनान में क्रमशः लू शिह चुन चिउ (चौथी से तीसरी शताब्दी ई. पू.) और अरस्तू द्वारा चन्द्रमा की कलादि के कारण समुद्री रीढ़हीन जन्तुओं के फैलने आदि की चर्चा से समन्वय रखता प्रतीत होता है। इन तथ्यों के हजारों मील दूर फैलनेवाला स्रोत कहाँ था यह इतिहास की समस्या है।[22]

भारत से एक ओर पिथेगोरस ओर दूसरी ओर कन्फ्यूशन (छठी सदी 50) द्वारा पश्चिम और पूर्व में नवीन प्रतिभा का नेतृत्व संचालन एक अद्भुत क्रांति को प्रकट करता है। पिथेगोरस सम्बन्धी अनेक किंव-

---

18. देखिये 1 (ख)।
19. वही।
20. देखिये 2।
21. देखिये 1 (फ)।
22. नीधम, भाग 1, पृ. 150—151 आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंतियाँ उनके अहिंसा पथ और गणितादि के विलक्षण ज्ञान को बतलाती हैं। लोक में जीवसंख्या की अचलता के आधार पर जनता को हिंसा तथा माँसाहार की ओर से मोड़कर शाकाहारी तथा हरियाली रहित भोजन की ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न पिथेगोरस की निजी प्रतिभा का द्योतक है (E. T. Bell, Magic of Numbers, 1946, pp. 87, 88, 91, 92)। यदि कोई साधारण स्रोत यूनान और चीन के मध्य रहा, तो ऐसे प्रकरण चीन में कन्फ्यूशस या ताओ काल में दृष्टिगत होना चाहिए। नीधम के अनुसार बौद्ध धर्म का चीन में प्रथम प्रवेश ई. पश्चात् 65 में हुआ जिसके प्राय: 100 वर्ष पश्चात् प्रथम सूत्रों का चीनी भाषा में लोयांग में अनुवाद प्रारम्भ हुआ। (नीधम, भाग 1, पृ. 112)। मिस्र देश की जागृति का काल भी प्राय: यही है, जबकि सायटिक युग (663-525 ई.) में वहाँ अहिंसक कूफू कालीन प्राचीन परम्पराओं का अकस्मात अनुसरण प्रारम्भ हुआ था और नरसिंह (Sphinx) प्रतीक पुन: पूजा की वस्तु बन गया था। सम्भवत: यही आकर्षण पिथेगोरस के पूर्व देश भ्रमण का कारण बना होगा।[23]

अविभागी पुद्गल परमाणु के आधार पर परिभाषित बिन्दु के प्रयोग में वीरसेन द्वारा कतिपय नवीन विधियों का उपयोग प्रकट हुआ है। इनमें से निश्शेषण विधि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसके द्वारा शंकु के समच्छिन्नक का घनफल निकाला गया है। इससे π का मान निकालने के ऐसे सूत्र का उपयोग किया गया है जो चीन में त्सु शुंग-चिह्न (प्राय: पाँचवी सदी Tsu Chhung-Chih) द्वारा प्रयुक्त हुआ है। जैन ग्रंथों—धवल—में राशि सिद्धान्त में प्रयुक्त भिन्न कलन चीन तथा मिस्र देशों के कलन से श्रेष्ठ है। चीन में सलगागणन (ई. पू. 4थी शताब्दी में), भारत में प्राय: 6वीं सदी अथवा कतिपय ग्रंथों (षट् खण्डागमादि) में ई. पश्चात् 2री सदी में उपलब्ध हैं। जहाँ चीन में वर्ग और घनमूल ई. पू. प्रथम सदी में दृष्टिगत हैं वहाँ षट्खण्डागम में सीमित क्षेत्र में स्थिति प्रदेश बिन्दुओं की संख्या का बारहवाँ वर्गमूल निकालने का उल्लेख है और जिसके तुल्य मान क्षेत्र, काल, भाव में प्रदत्त हैं। चीन में ज्यामितीय सामग्री ई. पू. तृतीय सदी में उपलब्ध है, वहीं तिलोयपण्णत्ती में पाँचवी सदी तथा इतर ग्रंथों में ई. पू. भी दृष्टिगत है। जहां चीन में प्राय: 1000 वर्ष पूर्व बीजगणित तथा ज्यामिति की मूलभूत तादात्म्य प्रकट है वहां धवल (9वीं सदी) तथा अलख्वारिज्नी (9 वीं सदी) में दृष्टव्य है। चीन में कूट स्थिति के प्रयोग भी प्राकृत ग्रंथों में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार अनिर्धृत विश्लेषण सुन त्जू (4थी सदी) तथा प्राकृत ग्रंथों में दृष्टिगत है।

लोकोत्तर गणित विज्ञान में ज्योतिष बिम्बों की संख्या का निर्धारण, उनकी गमनशीलता, सुमेरु से दूरी, चित्रातल से ऊंचाई, बिम्बों के आकार, तथा माप, आदि विविध प्रकार की सामग्री विकसित की गयी। इन प्राचीन तत्वों को हजारों वर्षों से अपरिवर्तित रखा गया (ति. प., पृ. 16-17)। यूनान से ये विधियाँ अत्यंत भिन्न हैं।[24]

कर्म सिद्धान्त के गणित का इतिहास विगत 25 वर्ष के विश्व विज्ञान में प्रोद्भूत गणितीय सिस्टम सिद्धान्त से प्रारम्भ हुआ है। नियंत्रण योग्यता तथा परिणाम योग्यता के आकलन गणितीय रूप में विश्व के

23. Salem Hossan, The Sphinx, Its History in the Light of Recent Excavations, Cairo, pp. 219-221, (1949).

24. देखिये 1 (ख)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतिहास में केवल कर्म सिद्धांत में ही निहित हैं। इसमें से फलित ज्योतिष आदि का विकास स्वाभाविक है।[25]

विज्ञान-विकास सम्बन्धी शोध दिशा :

जिस प्रकार आज के विज्ञान का आधार राशि-सिद्धान्त है, उसी प्रकार कर्म विज्ञान का आधारभूत गणित राशि-सैद्धान्तिक है। सिकदार द्वारा परमाणु सिद्धान्त पर विस्तृत शोध प्रबन्ध तथा अनेक शोध लेख प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिया गया है। वास्तव में कर्म सिद्धान्त का एक आधार परमाणु सिद्धान्त है। कर्म सिद्धान्त एक-सूत्री तथा संगत सिद्धान्त के रूप में अनेक उपधारणाओं (Postulates) तथा परिकल्पनाओं (Hypothesis) का आधार लेकर निर्मित किया गया। यह प्रिंसपिल थ्योरी के रूप में विकसित हुआ न कि कन्सट्रक्टिव थ्योरी के रूप में।[26]

अभी तक जो विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन जी. आर. जैन, एवं कोल जे. एफ. आदि द्वारा हुए हैं उनसे स्थिति आशाजनक तो प्रतीत होती है।[27] घटनाओं का इस प्रकार का आंशिक समाधान ही किसी सिद्धान्त को संगत सिद्ध नहीं कर सकता है। अपितु सिद्धान्त का महत्त्व तब सिद्ध होता है, जब कि वह आधुनिक सिद्धान्तों की समस्याओं को हल करने में योगदान देकर नवीन फलित को निकालने का पथ-प्रदर्शन कर सके।

कर्म सिद्धान्त में सन्निहित तत्त्वों में निम्नलिखित प्रमुख धारणाओं का सन्निवेश है :—

1. अनन्तों या अनन्त राशियों का पूर्णांकों पर आधारित, धारा ज्ञान से उपधारित, अल्प-बहुत्वादि अनेक राशि सम्बन्धी सिद्धान्त।[28]
2. समय की अविभाज्यता के आधार पर महत्तम एवं लघुत्तम प्रवेग की अवधारणा, जिससे काल और क्षेत्र के क्वांटम का प्रादुर्भाव।[29]
3. पुद्‌गल परमाणु की अविभाज्यता तथा उनकी राशि की यथार्थ गणात्मक उपधारणा। यह राशि जीव राशि से अनन्त गुनी है।
4. पुद्‌गल परमाणु का अनन्त पुद्‌गल परमाणुओं के साथ एक ही प्रदेश में अवगाहन।
5. द्रव्यों तथा उनके गुण पर्यायों का एक-दूसरे के गुण पर्यायों में अन्योन्याभाव एवं अत्यन्ता

---

25. ज्योतिष सम्बन्धी चीन में उपलब्ध सामग्री हेतु देखिये, 11, भाग 3। मिश्र, यूनान तथा बेबिलन आदि में प्राप्त सामग्री हेतु देखिये Neugebauer, O., The Exact Sciences in Antiquity, Providence, 1957। कर्म सिद्धान्त में फलित ज्योतिष संवाद के रूप में स्वभावतः उपस्थित हो जाता है। आय, व्यय, पुण्य, पाप आदि भावों का सत्त्व, आस्रव निर्जरा से सम्बन्ध अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।
26. इन सिद्धान्तों का विवेचन डा. आइन्स्टाईन ने The London Times, Nov. 28, 1919 में दिया था।
27. Jain, G. R., Cosmology, Old and New, Lucknow 1942, Kohl, J. F., Physikalische und Biologische Weltbild der Indischen Jaina Sekte, Aligang, 1956.
28. धाराओं से सम्बन्धित एक लेख शीघ्र प्रकाशित होने वाला है—Jain, L. C., Divergent Sequences Locating Transfinite Sets in Trilokasara (I. J. H. S. Calcutta)
29. देखिये Jain, L. C., Mathematical Foundations of Jaina Karma System, Bhagwan Mahavira and his relevance in modern times, Bikaner, 1976, pp. 132-150.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावादि। इसे द्रव्य स्वातन्त्र्य भी कहते हैं जो केवल जिनागम में ही उपलब्ध है, अन्यत्र नहीं।

6. स्पर्श गुण के अविभागी प्रतिच्छेदों (ऊर्जा स्तरों) के निश्चित आधार पर पुद्गल परमाणुओं का बन्ध।[30]

7. समयों के बीतने की अतीत-अनागत दिशा—अथवा क्रमबद्ध पर्यायों से सह सम्बन्ध। यह Causality का सिद्धान्त है जिसका उपयोग सिस्टम सिद्धान्त में हुआ है।[31]

8. उपादान शक्तियों के सिवाय पुद्गल का अन्य द्रव्यों से उदासीन अनुग्रह (सहकारिता) से गमन, परिणमन, अवगाहन तथा स्थिरता होना।

9. पुद्गल में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श विशेष गुणों के सिवाय सामान्य गुणों (प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अनन्त गुणी हानिवृद्धि, आदि) का होना।

10. केवल जीव तथा पुद्गल में क्रियावती एवं भाववती शक्ति का अस्तित्व। (द्रव्यों के देशान्तर प्राप्ति हेतु प्रदेशों के हलन-चलनरूप परिस्पन्द को क्रिया कहते हैं। उनमें होनेवाले अविरल प्रवाह रूप परिणमन को भाव कहते हैं।)

11. योग और मोह रूपी अध्यवसाय (input functions) विचरण से गुण स्थानों (control stations) सम्बन्धी परिणाम (output functions)। इनका चित्रण सिस्टम सिद्धान्त का एक अंग है।

12. आस्रव (input values) तथा उदयादि-निर्जरा (output values) युक्ति से सत्त्व (State) का ज्ञान। इसका चित्रण सिस्टम सिद्धान्त का दूसरा अंग है।

13. कर्म सिद्धान्त में सिस्टम सिद्धान्त की अपेक्षा बन्धादि तत्त्वों का समावेश। इस प्रकार कर्म सिद्धान्त एकसूत्री संगत सिद्धान्त से सिस्टम सिद्धान्त में अनेक सुझाव तथा उन्नयन हेतु नवीन पथ का अनुसरण।[32]

14. ज्योतिष सिद्धान्त में एकसूत्री सिद्धान्त (जो तिलोय पण्णत्ती प्रभृति ग्रन्थों में उपलब्ध है) द्वारा गणितीय गमनशीलता के नवीन नियमों की व्युत्पत्ति। कुन्तल-दीर्घवृत्तीय ज्योतिष बिम्बगमन द्वारा पंचांग सम्बन्धी समस्त जानकारी का आनयन।[33]

15. आधुनिकतम बीजगणितीय एवं ज्यामितीय ज्ञान के उपयोग से कर्म सिद्धान्त की यथार्थ गहराइयों में पहुँच की पूर्ण संभावना।[34]

---

30. देखिये, वही।

31. देखिये, Jain L. C., The Jaina Theory of Ultimate Particles, paper read at the univerity of Indore on 8-4-1976.

32. देखिये, 29।

33. देखिये 1 (ख)।
साथ ही देखिये, Jain L. C., On Spiro elliptic orbit of the Sun in Tiloyapannatti, paper read at the Univerity of Saugar.

34. इस विषय पर विस्तृत लेख System Theory in Jaina School of Mathematics प्रायः समाप्ति पर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ तक प्रत्यक्ष दर्शन और ज्ञान का प्रश्न है, उनकी सम्भाव्यता का प्राकृत ग्रंथों में आधुनिक काल के लिए निषेध है। तब मति और श्रुत से परोक्ष दर्शन और ज्ञान का प्रकरण सम्मुख आता है। पुद्गल द्रव्य विषयक दर्शन ज्ञान की उपलब्धि श्रुत के सिवाय मति से होती है। गति का आकार संदेशवाहक, पुद्गलक क्रियाएँ हैं। संदेश बाहन काल पर आधारित होने से सापेक्षता सिद्धान्त की आवश्यकता स्पष्ट है। सापेक्षता सिद्धान्त में जब महत्तम प्रवेग की उपधारणा की जाती है, तो भौतिक विज्ञान के प्रारंभिक आधुनिक प्रयोगों की पुष्टि होती है। साथ ही अल्पतम क्रिया (action) के क्वाण्टम की उपधारणा से क्वांटम यांत्रिकी का आधार बनता है, जिसमें अनिश्चिति के अनुबन्ध भी प्रयुक्त होते हैं।[35] आधुनिक सापेक्षता सिद्धान्त में जहाँ एक ओर महत्तम प्रवेग को उपधारित किया गया है, वहाँ उसे अल्पतम प्रवेग तथा अविभागी समय से अछूता रखा गया है। क्वाण्टम यांत्रिकी में पुद्गल की द्वैतमय (तरंगात्मक एवं कणिकात्मक) दशाओं तथा गति और स्थिति के सम्बन्ध में समाधान नहीं मिलता है क्योंकि यह कन्स्ट्रक्टिव थ्योरी है, सापेक्षता सिद्धान्त की भाँति प्रिंसीपल थ्योरी नहीं है। इन समस्याओं का समाधान जैन समय तथा मंद तम प्रवेग की अवधारणाएँ करता प्रतीत होता है।[36]

प्राकृत ग्रंथों में अतीत काल समय राशि से अनागत काल राशि अनन्तगुणी बतलाना गणित की एक विलक्षण वस्तु है। इससे भी विलक्षण तथ्य है सुक्रमबद्धी साध्य (well-ordering theorem) गर्भित प्रक्रिया का अस्तित्व, "कि सर्वधारा में 1, 2, 3, से प्रारम्भ करते हुए, समस्त संख्येय, असंख्येय तथा अनन्त राशियाँ पार करते हुए केवल ज्ञान राशि तक पहुँचना।" इस साध्य को सिद्ध करने का आश्वासन जार्ज केण्टर ने दिया था। किन्तु यह साध्य अब कथंचित सिद्ध किया जा सकता है।[37]

अनन्तों के अल्प-बहुत्व स्थापित करने में केण्टर और डेडिकेंड की ज्यामितीय विधियों में स्पष्ट अन्तर है। जहाँ आज सरलरेखा अथवा व्यवहार काल की अतीत-अनागत दिशायें किन्हीं भी दो बिन्दुओं के अन्तराल में अगण्य (non-denumerable) राशि की मान्यता है, वहाँ प्राकृत ग्रंथों में बिन्दुओं की राशि की सीमित (असंख्येय अथवा संख्येय) संख्या की मान्यता है।[38] असंख्यात कालाणुओं से लोकाकाश-द्रव्य की अखंडता पूर्णरूपेण सम्पाती है।

इसी प्रकार कर्म-सिद्धान्त विषयक अनेक तथ्यों को आधुनिक तथ्यों की तुलना में रखते हुए नवीन अंशदान का प्रयास करना होगा। ज्यामिति की अपेक्षा सिस्टम तथा कर्म सिद्धान्त में बीजगणितीय दृष्टि विकसित की गयी है जो घटना-चक्र की जानकारी अत्यंत सहज ढंग से देती है। इस आधार पर बीजगणितीय अध्ययन का शोध-क्षेत्र लाभदायक सिद्ध होता प्रतीत होता है।[39]

* * *

35. देखिये, 29।
36. देखिये, वही।
37. देखिये, Z lot, W. L., The Role of the Axiom of Choice in the Development of the Abstract Theory of Sets, Library of Congress, Mic 57-2164, Columbia University Thsis (1957)
38. देखिए 1 (इ)।
39. देखिये, Kalman, R. E. Introduction to the Algebriac Theory of Linear Dynamical Systems, Lecture notes, vol. II, Springer Verlag, 1969.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org